अध्याय-4

उपसंहार

4.1 परिचय

4.2 प्रस्तुत शोध कार्य में निहित अध्याय

4.3 शोध के द्वारा अनुसंधान प्रश्नों के संभावित उत्तर

4.4 शोधकर्ता के व्यक्तिगत विचार प्रतिबिंब

4.5 भावी शोध कार्य हेतु सुझाव

4.1 परिचय

जगतगुरू आदि शंकराचार्य आदि शंकर के निर्माण के 12 100 वर्षो के बाद लोगों को यह ज्ञात ही नहीं है कि उनकी शिक्षा-दीक्षा मध्यप्रदेश के ओमकारेश्वर में हुई थी। महान संगठन करता आचार्य शंकर ने देश को एक सूत्र में पिरोने के लिए चार वेदों के आधार पर चार पीठों की स्थापना की थी। माना कि ये चारों पीठ उनकी स्मृति के आधार स्तंभ है किंतु मध्य प्रदेश की हवा से यह ऐसे गायब हो गए हैं जैसे किसी जादूगर के जाने के बाद गायब हो जाते हैं यह सब बड़ा विचित्र लगता है। लेकिन आचार्य शंकर की पुण्य स्मरण में कोई कृतज्ञता क्यों नहीं है उनकी ओमकारेश्वर में दीक्षा और उनकी मौलिकता के प्रति आश्चर्य क्यों नहीं है। या भाई आवाज क्यों नहीं है कि उन्होंने अनहोनी को होनी से परिवर्तित कर दिया था। आदि शंकर ने प्राचीन भारत के मर्म को छुआ था उन्होंने प्राचीन भारत की विविधता व लंबी उम्र की विसंगतियों को देखा था और उनके शास्त्रार्थ करके उन्हें मनुष्य जैसा आचरण करना सिखाया था। उन्होंने वेद विरुद्ध मतों का खंडन किया था। सही मायने में अवैध रूप से क्रूसेडरथे धर्म योद्धा थे। आदि शंकर जब मध्यप्रदेश आए तो उन्होंने तघुतीन समाज के पतन को देखा था। उज्जैनी जैसे (तीर्थ- स्थलों में से एक)नगरी का पालिका के भ्रष्ट आचरण को किस प्रकार सहन

कर रही थी पूर्णविराम उन्होंने कपाली के जैसे भ्रष्ट सामाजिक ओ को शास्त्रार्थ में पराजित कर उज्जैनी के विगत वैभव को वापस लौटाया। आदि शंकर का चमत्कार यह है कि उन्होंने पोखरा में बैठे हुए देश में सागर का आभास पैदा किया। उन्होंने देश को एक सूत्र में बांधा भारत की रोटी पर उन्होंने प्रहार किया जाति प्रथा का विरोध किया वैदिक धर्म की स्थापना की बलि प्रथा का विनाश किया। आदि शंकराचार्य ने जादू से उस रूडी को गायब कर दिया जिसकी चुभन भारतीयों को प्राचीन काल से हो रही थी। आदि शंकर अपने युग की उपज है। में योगी के मुहावरों में ही बोलते हैं और युग की चुनौतियों का सामना करते हैं। अमर इसलिए हैं कि वे युगीन है। महानता को देशकाल से अलग करके देखना वैसा ही है जैसे ध्वनि को माध्यम से अलग करके आंकना। आदि शंकर महापुरुष इसलिए थे उन्होंने अपने युवकों वाणी थी। वह युगीन थे। इसलिए उन्होंने युवक को झकझोर दिया और युगांतर कर दिया।

वे युगीन थे इसलिए उनकी महानता युगे की दीवारों को तोड़कर अमर हो चुकी है। राष्ट्र नेता तब कहलाता है जब वह विद्यमान चुनौतियों का ऐसा कोई हल निकालता है जो नितांत मौलिक और लीक से हटकर हो। आदि शंकर ने लीक से हटकर अपने युग की जरूरतों के मुताबिक शास्त्रार्थ और भाष्यों के माध्यम से से क्रांतिकारी बदलाव लेकर आए।

उन्होंने ओमकारेश्वर में बैठकर अपने गुरु की सलाह से यह मार्ग चुना था। उनसे पहले शास्त्रार्थ की ऐसी परंपरा नहीं थी। इसलिए वे महान थे। में चलते भी किस के रास्ते पर? उनसे पहले इस देश के महान धर्मों में तंत्र बाद प्रवेश कर गया था। समरसता के बजाय विलासिता के सिद्धांत का बोलबाला था। आदि शंकर महान इसलिए नहीं थे उन्होंने शास्त्रार्थ के माध्यम से महेश्वर निवासी मंडन मिश्र जैसे दिग्गज विद्वानों को पराजित किया था बल्कि वे महान इसलिए थे कि उन्होंने पहली बार द्वैध की भावना से लड़ाई ली और समूचे भारत में अद्वैत का परचम लहराया। आचार्य शंकर में एक

विश्वव्यापी संदर्भ था। एक विशिष्ट विचारधारा से ओतप्रोत थे उनमें इतिहास के देवता का मौन निमंत्रण था। उन्हें भारत को सुदूर क्षितिज पर ले जाने की चिंता थी और उन्होंनें वह कर दिखाया। अपने सपनों का एक ऐसा भारत देखना चाहते थे जिसमें व्यर्थ की भावना ना हो और सभी अद्वैत से जुड़ जाएं। "युद्ध में देहि" यही उनका नारा था। शास्त्र ही उनका माध्यम था। हरचरण उनके लिए शास्त्रार्थ था क्योंकि हरचरण भारत को अद्वैतवाद तक पहुंचाता था। आदि शंकर के आधे दर्शन ने साधन और साध्य का द्वंद समाप्त कर दिया था। वे सही मायने में जगद्गुरु थे। आदि शंकर ने जो कुछ भी लिखा और बोला उससे होता है कि वह कैसे युगीन थे और कैसे युगांत कारी।।

4.1.2 भाष्य उद्घोष करते हैं कि मनुष्य देह, इंद्रिय और मन का संघटन मात्र नहीं है, बल्कि वह सुख-दुख, जन्म-मरण से परे दिव्यस्वरूप है, आत्मस्वरूप है। आत्मभाव से मनुष्य जगत का द्रष्टा भी है और दृश्य भी। जहां-जहां ईश्वर की सृष्टि का आलोक व विस्तार है, वहीं-वहीं उसकी पहुंच है। वह परमात्मा का अंशीभूत आत्मा है। यही जीवन का चरम-परम पुरुषार्थ है। इस परम भावबोध का उद्घोष करने के लिए उपनिषद के चार महामंत्र हैं। तत्वमसि (तुम वही हो), अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्मा हूं), प्रज्ञानं ब्रह्मा (आत्मा ही ब्रह्मा है), सर्वम खिलविद्म ब्रह्मा (सर्वत्र ब्रह्मा ही है)। उपनिषद के ये चार महावाक्य मानव जाति के लिए महाप्राण, महोषधि एवं संजीवनी बूटी के समान हैं, जिन्हें हृदयंगम कर मनुष्य आत्मस्थ हो सकता है।

उपनिषद की शिक्षा मनुष्य देह को मरण धर्मा मानकर सतत् परिवर्तनशील बताती है। मनुष्य आत्मस्वरूप है। अत: संसार के समस्त आकर्षण, साधन, संबंध, बंधन, क्षणिक और भ्रम हैं। अज्ञान ही उसे मोहपाश के प्रबल बंधन में बांधता है। जीवात्मा इन बंधनों से परे और पार है। उसमें अनंत ऊर्जा, असीम शक्ति व सामर्थ्य तथा विपुल शांति, प्रेमज्ञान व आनन्द का परम् पुंज समाहित है।

उपनिषद में श्रवण, मनन और निदिध्यासनरूपी तीन चरणों का उल्लेख मिलता है। मोक्ष की कामना करने वाला गुरु, ग्रंथों तथा महापुरुषों से सदा ब्रह्मा के विषय में बारंबार श्रवण करे। इसके विषय में श्रद्धापूर्वक मनन-चिंतन करे, क्योंकि यही ब्रह्मा ही एकमात्र मननीय व चिंतनीय है। निदिध्यासन ध्यान का पर्याय है। इस अवस्था में साधक गुरु द्वारा ज्ञान व साधना में लीन हो जाए। उसे संकल्पपूर्वक अपनी समस्त दुर्बलताओं को त्यागकर संयम द्वारा साधना के पथ पर आरूढ़ होना चाहिए। यही उपनिषद् की पावन व दिव्य शिक्षा है, जिसे अपनाकर हम अपने आंतरिक विकास के साथ-साथ नैतिकता तथा उच्च मानवीय मूल्यों का भी संवर्धन कर सकते हैं। उपनिषदों के समान कल्याणकारी एवं श्रेयस्कर कोई भी अन्य विद्या नहीं है। इसे अपनाकर मानव ब्रह्मा से साक्षात्कार कर सकता है।

4.2 प्रस्तुत शोध कार्य में निहित अध्याय

- **प्रथम अध्याय**
- **द्वितीय अध्याय**
- **तृतीय अध्याय**
- **चतुर्थ अध्याय**
- **पंचम अध्याय**

4.3 शोध कार्य द्वारा अनुसंधान प्रश्नों के संभावित उत्तर

- **आदि शंकराचार्य के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता आज भी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एकता में इसकी क्या भूमिका है -** आदि शंकराचार्य का जीवन, उनके द्वारा रचित विभिन्न रचनाएं और विषेश 10प्रमुख भाष्यों का गहनता से अध्ययन कर जितना मैं एक शोधार्थी के रूप में समझ विकसित कर पाई वह यह है

कि, अद्वैत का अर्थ है दो नहीं इसका अर्थ यह है कि एक ही है, उदाहरण के लिए मिट्टी और मिट्टी से बने विभिन्न बर्तन यदि हम इस उदाहरण को समझ पाए इसका मतलब हम आत्म और परमात्मा के बीच कोई अंतर नहीं पाते और यही सत्य है, अज्ञानता के वशीभूत हम आत्म को ही नहीं समझ पाते बल्कि कभी हम कोशिश भी नहीं करते। उपनिषदों और भाष्यों के अध्ययन से आत्म को जानने-समझने हेतु सही मार्ग दिखलाई देता है और जीवन का सर्वोच्च पद **आत्मबोध** किया जा सकता है। जिस प्रकार गन्ने के रस में प्रत्येक बूंद में शर्करा उपस्थित होती है जिस प्रकार नींबू के प्रत्येक करण की अम्लीयता अलग नहीं की जा सकती उसी प्रकार इस ब्रह्मांड में मौजूद प्रत्येक कण परम शक्ति का प्रतीक है जिसमें परमात्मा का वास है और आत्मा परमात्मा से भिन्न नहीं है फिर क्यों हम कभी जाति के नाम पर कभी रंग के नाम पर कभी वेशभूषा के आधार पर कभी धर्म संप्रदाय के आधार पर एक दूसरे को अलग मानते हैं अद्वैत दर्शन हमें आत्म बोध कराता है मूल्यों का संवर्धन करता है।

- **भाष्यों के अध्ययन से जीवन को कैसे सार्थक और सफल किया जा सकता है- प्रमुख 10भाष्यों का अध्ययन और उन पर विचार मंथन करते हुए एक शोधार्थी के रूप में एसा अनुभव किया कि, इन्हीं भाष्यो में हमारे जीवन के सभी आयामों से जुड़े प्रत्येक प्रश्नों का हल और मार्ग इन्हीं भाष्यो में सदियों से छुपा हुआ है, आवश्यकता है तो खुद उपनिषद हो जाने की खुद उपनिषद हों जाने से मेरा तात्पर्य यह है कि भाष्यो और उपनिषदों का श्रवण करना उतना लाभ नहीं देगा जितना कि भाष्यों को पढ़ कर जानना और जानने के बाद मानकर जीवन उन्हीं दिखाएं गई मार्गदर्शिका के अनुसार जिया जाए। इन भाष्यो का समेकन भारतीय शिक्षा प्रणाली में शामिल करने से कम उम्र से ही बच्चों में उच्च कोटि के विचारों का पोषण किया जा सकता है, हमारे बच्चे**

अध्ययन तो कर रहे हैं परन्तु उनमें मानवीय मूल्यों का विकास लगभग न के बराबर ही हुआ है वे सांसारिक तड़क-भड़क से आकर्षित हो कर ब्रम्ह को न जानने के कारण हर समय जीवन में भ्रमित रहते हैं।

4.4 शोधकर्ता के व्यक्तिगत विचार प्रतिबिंब

आदि शंकराचार्य का जीवन अपने आप में किसी दर्शन से कम नहीं मालूम पड़ता आदि शंकराचार्य का भारत एक ऐसे भारत की कल्पना थी, जहां प्रचलित कुरीतियों और जातिप्रथा आदि से ऊपर उठकर एक सभ्य समतामूलक और समावेशी समाज के विकास की संभावनाओं को साकार करने का विद्रोह था।भारत देश न जाने कितने टुकड़ों में बंटा हुआ था,कभी धर्म के नाम पर कभी जाति के नाम पर कभी संप्रदाय के नाम पर आदि शंकराचार्य ने इन टुकड़ों को जोड़कर एक करने का अद्भुत कार्य किया परंतु आज भारत जैसे लोकतांत्रिक देश जोकि संवैधानिक मूल्यों, आपसी सौहार्द्र, भाईचारा बंधुता एवं धर्मनिरपेक्षता के संवेधानिक विचारों को आधारभूत संरचना मानकर राष्ट्रनिर्माण करने की राह पर अग्रसर है,इस समय भारतीय संस्कृति वैज्ञानिकता और आध्यात्मिक कंगाली का शिकार हो चुकी है, अतः शिक्षा प्रणाली भी इतनी कारगर नहीं कि हम मानवीय मूल्यों की स्थापना करने में सफल रहे हों इस संकट में एक ही कंटक उभर कर सामने आता है आध्यात्मिक चिंतन और मंथन। हमारे समाज में व्याप्त हर समाजिक बुराईयों, कुरीतियों का समाधान आध्यात्मिक ज्ञान चक्षु खुल जाने पर ही संभव है,जो कि आदि शंकराचार्य द्वारा रचित भाष्योंऔर वेदांत दर्शन से ही आत्मबोध का बोध किया जा सकता है। सर्वांगीण विकास का अंतिम चरण आत्मज्ञान का साक्षात्कार ही तो है अतः इस स्थिति में पुनः एक बार आदि गुरु शंकराचार्य के भाष्यो और वेदांत की शरण लेनी ही होगी। आदि गुरु शंकराचार्य की जाति विहीन एवं अभेद दृष्टि आचार्य शंकर की जातिविहीन एवं अभेद दृष्टि डॉ.रामनाथ झा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली विश्व के अन्य सभी चिंतनों से भिन्न वैदिक

चिंतन इस जगत् का मूल कारण एक चेतन तत्व को मानता है। सृष्टि के क्रम में वही एक तत्व अनेक रूपों में प्रकट हुआ (सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेति - तैत्तिरीय उपनिषद् 2.6, तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय - छान्दोग्योपनिषद् 6.2.3)। इस प्रकार सृष्टि में अनेकरूपता होते हुए भी वे सभी वास्तविक रूप में एक हैं- ऐसा सुनिश्चित मत है। अन्य सभी मतभेद पर आधारित है, अत: वहाँ भेद पर आधारित समस्या भी मौलिक है। आचार्य शंकर ने वेद के इसी चिंतन को समाज में स्थापित करने हेतु अपने संपूर्ण जीवन को अर्पित कर दिया। उनकी दृष्टि में जब एक मूल कारण की अभिव्यक्ति यह नानारूपात्मक संसार है,तब सभी प्राणिमात्र वही मूलरूप है, उससे भिन्न नहीं है। इस प्रकार का चिंतन यदि समाज में विकसित होता है तो ऊँच-नीच, भेदभाव, जाति, धर्म, सम्प्रदाय अपने आप समाप्त हो जायेंगे। इसे हम उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं- स्वर्ण का रूप एक होता है, किन्तु यदि उससे अनेक आभूषण बनाये जाते तो उनके अलग-अलग रूप हो जाते हैं। स्वर्ण की दृष्टि से सभी आभूषण एक ही हैं क्योंकि सभी में एक ही स्वर्ण विद्यमान है। परंतु यदि आभूषण को अलग-अलग रूप की दृष्टि से देखें तो सभी अलग-अलग हैं। स्वर्णकार की दृष्टि से सभी स्वर्णमात्र है, किन्तु क्रेता (खरीदने वाले) की दृष्टि से सभी अलग-अलग हैं। इसी प्रकार मूल कारण की दृष्टि से सभी एक हैं, किन्तु अलग-अलग मनुष्य की दृष्टि से सभी एक-दूसरे से भिन्न हैं। यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्।। (छान्दोग्योपनिषद्-शाङ्करभाष्य-6.1.5)

आचार्य शंकर इसी का विश्लेषण करते हुए कहते हैं कि कोई व्यक्ति मूल कारण की दृष्टि से मनुष्यों को देखता है तो उसकी अभेदपरक दृष्टि रहती है तथा यही ज्ञान है। किन्तु कोई व्यक्ति यदि सभी को वास्तविक रूप से एक दूसरे से भिन्न मानता है तो वही अज्ञान है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान हमेशा सभी प्राणियों में एकत्व का बोध कराता है तथा अज्ञान भेद को

समस्याओं को जन्म देता है। इस प्रकार आचार्य शंकर के दर्शन के दो प्रयोजन हैं- प्रथम, सभी व्यक्ति के अज्ञान का नाश हो जिससे वे वास्तविकता को जान सकें। तथा सभी को अपने जैसामानतें हुए एक समरसतापूर्ण समाज का निर्माण कर सकें। द्वितीय अज्ञान के नष्ट होने से एकता और

समरसता पर आधारित समाज का निर्माण करने से ही सभी को वास्तविक सुख की प्राप्ति हो सकती है। निष्कर्षत: अज्ञान का नाश एवं सभी को परमसुख की प्राप्ति ही उनके सम्पूर्ण जीवन के परिश्रम का उद्देश्य।

यही कारण है कि वे ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य के आरंभ में संपूर्ण वर्णाश्रम व्यवस्था को अज्ञान का कार्य मानते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि किसी को यह भान होता है कि वह ब्राह्मण वर्ण है तथा अन्य दूसरे वर्णों से भिन्न है तो वह निश्चित रूप से अज्ञानी है। यही अन्य वर्गों पर भी लागू होता प्रस्तुत करते हुए अनेकहै। इस विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि आचार्य शंकर ने ब्रह्मबंधु (छान्दोग्योपनिषद् 6.1) की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया है कि समाज में ऐसे भी लोग हैं जो अपने को ब्राह्मण मानते हैं किन्तु ब्राह्मणों का आचरण नहीं करते। तात्पर्य यह है कि अध्ययन-अध्यापन, शोध, ज्ञान- विज्ञान, अध्यात्म इत्यादि जो ब्राह्मण के कर्म हैं उन कर्मो को न करते हुए वे अन्य कर्म करते हैं तथा ब्राह्मण होने का दंभ भरते हैं। ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ब्रह्मणान् बन्धून् व्यपदिशति न स्वयं ब्राह्मणवृत्त इति (छान्दोग्योपनिषद्-शाङ्करभाष्य-6.1.1) कोई भी व्यक्ति तभी ज्ञानी हो सकता है जब वह सभी को अपना ही रूप समझने लगे। इसी प्रकार सभी शास्त्र भी तब तक अज्ञान रूप ही है जब तक हमें सभी प्राणियों में अभेद का ज्ञान नहीं हो जाता। तमेतमविद्याख्यमात्मानात्मनो: इतरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेयव्यवहारा: लौलिका वैदिकाश्च प्रवृता: सर्वाणि च शास्त्राणि विधिप्रतिषेधमोक्षपराणि। (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य - अध्यासभाष्य) 1. 'अविद्यावद्विषयाण्येव प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानिशास्त्राणि च। पश्वादिभिश्चाविशेषात्।' (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य-

अध्यासभाष्य) 2. अस्यानर्थहतोः प्रहाणाय आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभन्ते। उपर्युक्त सिद्धांत को स्थापित करने हेतु आचार्य शंकर ने वेद (श्रुति) को आधार बनाया है क्योंकि उसी के अध्ययन से अज्ञान का नाश तथा कल्याण संभव है। इस क्रम में यह ज्ञातव्य है कि यजुर्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण को वेद पढ़ने का अधिकार है अर्थात् वेद का अध्ययन कर सभी अपने कल्याण की ओर उन्मुख हों। 'यथेमांवाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूमासमय में कामः समृध्यतामुपमादो नमः (यजुर्वेद 26/2) अर्थात् जिस प्रकार कल्याण करने वाली इस (दिव्य) वेदवाणी का हमने (मन्त्रदृष्टा ऋषि ने) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, प्रिय, अप्रिय जनों एवं सभी लोगों के लिये उपदेश किया है, उसी प्रकार हे मनुष्यों! आप लोग भी उपदेश करें, जिससे इस संसार में यज्ञ हेतु देवताओं को दक्षिणा देने वाले हमसे प्रेम करें। हमारा यह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो और हमें यश की प्राप्ति हो। इसी प्रसंग में यह भी ज्ञातव्य है सम्पूर्ण वेद में जाति शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं है। 'वर्ण' शब्द का अर्थ व्यवसाय के वरण या चयन से है अर्थात अपने व्यवसाय के चयन के आधार पर कोई भी व्यक्ति किसी वर्ण का हो सकता है। वैदिक शब्दों की व्याख्या करने वाला सर्वप्रथम एवं सर्वप्रामाणिक शास्त्र निरुक्त में भी 'वर्णो वृणोतेः' (निरुक्त 2.1.4) अर्थात् वरण या चयन के कारण वर्ण होता है' वर्ण का अर्थ इसी प्रकार उपलब्ध है। ऐसे सभी प्रसंगों को आत्मसात् करने वाले एवं वेदमात्र को अपने सिद्धांत 'अद्वैतवाद' का अधिष्ठान मानने वाले आचार्य शंकर किसी जाति विशेष के बारे में अनुचित बातें कदापि नहीं लिख सकते। श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य 4.13 में भी आचार्य शंकर जाति की बात न कर केवल वर्ण की बात करते हैं जो अपने कर्म से ही वर्ण विशेष बनता है। एक अन्य विषय विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि

आचार्य शंकर स्पष्ट रूप से कहते हैं कि श्रुति/वेद के अनुसार व्याख्या करने वाली स्मृति ही प्रमाण है-

'श्रुत्यनुसारिण्य: स्मृत्य: प्रमाणम्' (ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य 2.1.1)

अन्य स्मृतियाँ जो श्रुति के विरोध में कोई भी विषय प्रस्तुत करती हैं सर्वथा अप्रमाणिक एवं आग्रहय है। इस नियम के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वेद को प्रमाणभूत मानने वाले आचार्य शंकर उसी वेद के विरुद्ध जाकर किसी स्मृति को आधार बनाकर किसी जाति विशेष का विरोध कैसे कर सकते हैं?
वेद के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषि किसी वर्ण या जाति विशेष का न होकर केवल उन्नत मानव मात्र हैं, जो प्रज्ञा से सम्पन्न हैं तथा प्रकृति या ब्रह्माण्ड की समरसता एवं समग्रता से अवगत हैं। किन्तु ऋषि के माता-पिता के आधार पर यदि कोई स्थूल व्यक्ति उन्हें वर्ण की परिधि में लाता है तो भी जाबालि ऋषि तथा ऐतरेय ऋषि दलित माता के पुत्र थे, फिर भी ऋषित्व को प्राप्त हुए। आचार्य शंकर उन्हें प्रमाणभूत आचार्यों के रूप में स्वीकार करते हैं।

ऐत्रेय उपनिषद् पर उनका भाष्य है तथा जाबालोपनिषद् एवं ऋषि जाबालि को वे सदैव आदर के साथ उद्धृत करते हैं। यदि ऐसा है तो वह किसी प्रकार भी किसी जाति या वर्ण विशेष का निरादर कैसे कर सकते हैं?
भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ वेद के सम्पादक, महाभारत एवं पुराणों के रचयिता तथा वैदिक ज्ञान के सारभूत गीता एवं तार्किक प्रखरता की कसौटी ब्रह्मसूत्र के रचयिता वेदव्यास की माता भी दलित समाज से हैं। किन्तु वेदव्यास आचार्य शंकर के परमपूज्य तथा उनकी दृष्टि में भगवान् श्री विष्णु के अवतार हैं। इस भाव से सम्पन्न आचार्य शंकर किसी को भी हीन नहीं मान सकते।

श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्य के उपोद्घात में जब आचार्य शंकर धर्म के द्वारा अभ्युदय और नि:श्रेयस की बात करते हैं तो प्राणिमत्र के लिये करते हैं, न किसी वर्णविशेष के लिये या जाति विशेष के लिये-

'जगत: स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षात् अभ्युदयनि:श्रेयसहेतु: य: सधर्मो ब्राहमणायैः वर्णिभिः आश्रमिभि:च श्रेयोऽर्थिभि: अनुष्ठीयमानः!'

आचार्य शंकर ने अपनी विश्वप्रसिद्ध रचना निर्वाणषटकम् में व्यक्ति के वास्तविक व्यक्तित्व का विवेचन करते हुए अपने प्रयोजन को स्पष्ट किया है। उसके अनुसार व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप वर्ण, जाति, धर्म, इनसे परे शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, जिसमें भेद का अभाव है, ऊँच-नीच का अभाव है, समरसता, समग्रता है, एकता है, समावेशिता है एवं आनन्द की पराकाष्ठा है।

न मे द्वेषरागौन मे जातिभेद:।.
अहं निर्विकल्पो निराकाररूप: विभुत्वाच सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणां। न चासंगतं नैव मुक्तिन मेय:
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।। (निर्वाणषटकम्)

उपदेशसाहस्री में भी आचार्य शंकर कहते हैं कि व्यक्ति को जाति आदि को सम्यक् रूप से त्याग करते हुए अपने आत्मस्वरूप को जानना चाहिए।
जात्यादीन्संपरित्यज्य निमित्तं कर्मणां बुधः।

4.5 भावी शोध कार्य हेतु सुझाव

साहित्य पुनरावलोकन करते समय मुझे इस विषय पर कुछ ज्यादा अनुसंधान कार्य नहीं मिल सके अत इस परिस्थिति में विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता और वेदों के जानकार और धर्मानुरागियों से परिचर्चाएं और प्रश्नोत्तरी बहुत मददगार साबित हुई और मैं यह शोध कर पाई।

अपने शोध कार्य के दौरान शोधार्थी के रूप में मैंने पाया वेदांत दर्शन या अद्वैत वेदांत दर्शन एक ऐसा क्षेत्र है जो बहुत ही गूढता लिए हुए है, ना जाने कितने रहस्य अपने दर्शन में छुपाए हुए हैं परंतु जब इनका उजागर होता है तो मानव सभ्यता जन्म जन्मांतर के लिए धन्य हो जाती है और इन रहस्य को जानने समझने के बाद मानव जीवन उसी तरह उसी पथ पर जिन पर हमें हमारे ऋषि-मुनियों ने पूर्ण वैज्ञानिकता के साथ और तर्क शीलता के साथ भावी पीढ़ी को उपहार स्वरूप दिया है उसको संजोया जा सके और मानव कल्याण हेतु उपयोग व संरक्षण भी किया जाना चाहिए अतः हमारी शिक्षा नीति में और पाठ्यचर्या में इन वेदांन्तों के अध्ययन को अनिवार्य किया जाना चाहिए जिससे कि हमारी भावी पीढ़ी बिना किसी तनाव अवसाद आदि से ग्रस्त हुए बिना जीवन के महत्व को समझ कर अपने जीवन का सही उपयोग कर अपने समाज राष्ट्र निर्माण और विश्वकल्याण हेतु अपना सहयोग जरुर दें,। **इन उपनिषदों और भाषाओं का पठन-पाठन आज वैश्वीकरण के दौर में व्याप्त सभी समस्याओं जैसे कि मानव मूल्यों का हनन है, धरती मां को मानव गतिविधियों द्वारा पहुंचाए जाने वाला नुकसान हो संपूर्ण मानव जीवन का अस्तित्व ही खतरे में आ पहुंचा है इस समय आदि शंकराचार्य जैसे युगीन महा गुरुओं का मार्गदर्शन ही प्रासंगिक है जब-जब समाज**

खतरे में पड़ जाता है तब तब आध्यात्मिक ऊर्जाएं ही इन विपदाओं से मुक्ति दिलाने में मदद करतीं हैं।